JANUARY, 1998

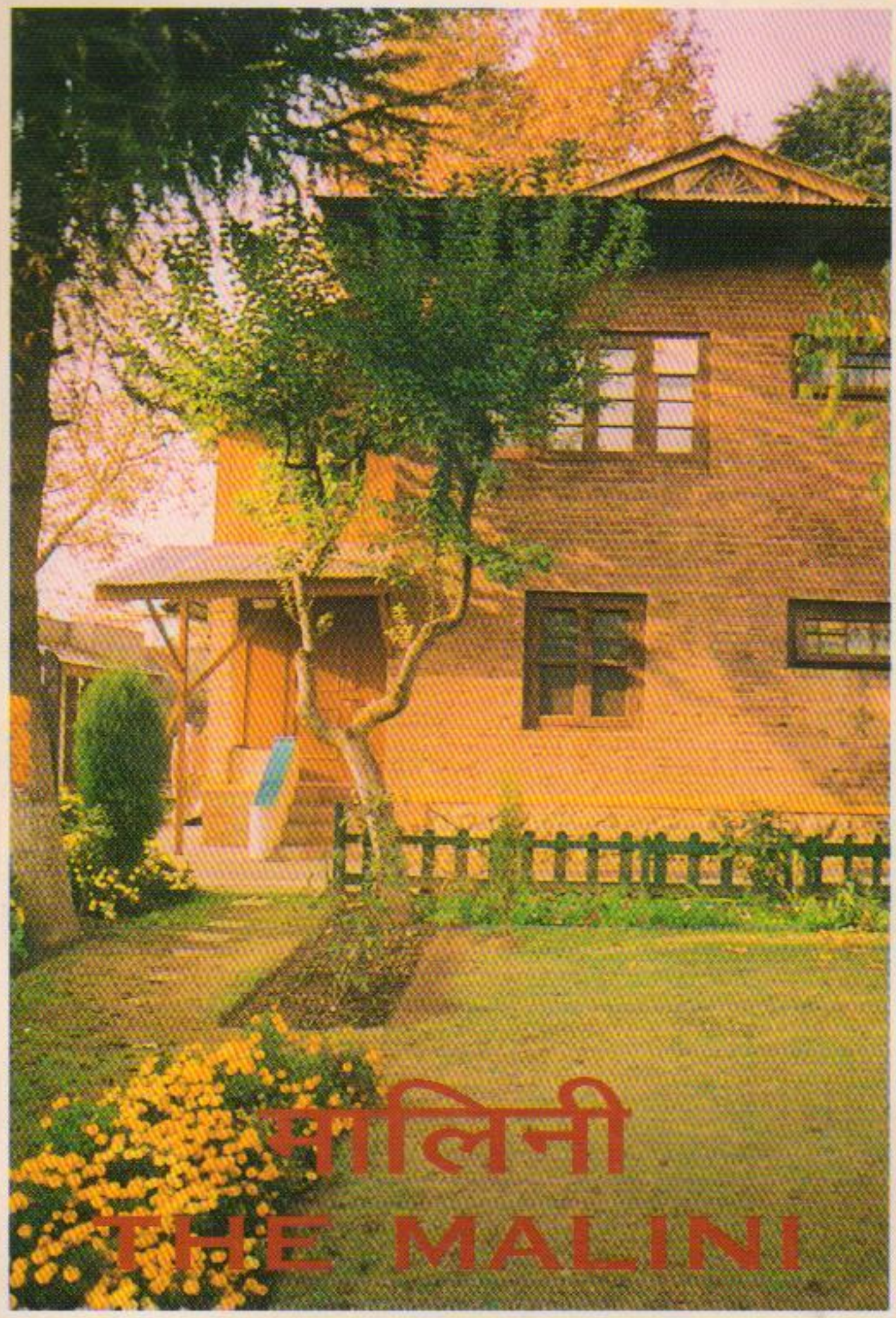

ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Vol. III NO. 4 ISSUE XI
JANUARY, 1998

मालिनी

THE MALINI

Abhinavagupta about Mālinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।
भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी॥

Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union with her all the treatises of non-dualistic order achieve the nature of divine potency.

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :
Sri Inderkrishan Raina
(Secretary/Trustee)
Sri Samvit Prakash Dhar
Sri Brijnath Kaul
Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :
Sushri Prabhadevi
Prof. Nilakanth Gurtoo
Prof. Makhanlal Kukiloo
Sri Somnath Saproo

Co-ordinator,
Administrative Office—Jammu

Publishers :
Ishwar Ashram Trust
Ishber (Nishat), Srinagar
Kashmir.

Administrative Office :
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.
Tel. : 555755

Branch Office :
Ishwar Ashram Trust
Delhi Chapter
C/o Capt. Kachroo
J-77 Kalkaji, New Delhi - 110 019
Tel. : 6430226

January, 1998
Price : Rs. 15.00

© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust
by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 328-1568, 327-1568

ॐ नमः परमसंविद् चिद्वपुषे

विषय सूची : Contents

	सम्पादक की लेखनी से		4
1.	Śiva Sūtras	*Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāja*	6
	शैवयोगी की महासमाधि		
2.	Kālī in Tantrāloka	*Dr. B. N. Pandit*	11
	विद्वान् संगी साथी बिछुड़ गया		17
3.	Sangrahastotra	*Late Sh. J. N. Koul Kamal*	18
4.	Vidyadhar	*Sh. Nathjee*	23
5.	Think over it	*Gems from Aṣṭāvakra Gītā*	26
6.	विज्ञान भैरव – समीक्षात्मक अध्ययन	*ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज*	27
7.	शारिकादेवी श्रद्धाञ्जलिः	*डॉ. बी. एन. कल्ला*	33
8.	अनमोल रत्न गुरुदेव का	*सुश्री प्रभादेवी*	34
9.	सद्गुरु गाथामाला	*प्रो० मखनलाल कुकिलू*	36
10.	A Report from Switzerland	*Courtesy—Secretary Foundation 'Friend of the People', Montreux, Switzerland*	40

सम्पादक की लेखनी से

मालिनी के ग्यारहवें अंक को सद्गुरु महाराज के चरणों में समर्पित करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। सद्गुरु निर्वाण जयन्ती दिवस पर प्रकाशित अंक से लेकर आजतक हमारी प्रगति का मार्ग किन-किन कठिनाईयों का सामना करता हुआ परम उद्देश्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो रहा है, वह उल्लेखनीय है। परम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, पूर्णता वा दिव्यबोध की प्राप्ति के लिए, एक क्षण गंवाये बिना सद्गुरु के चरण कमलों का ही हमें सदा स्मरण करना चाहिए। क्योंकि सभी तीर्थस्थान सभी दैवी शक्तियां एवं पवित्र नदियां सद्गुरु के दक्षिण चरण के अगूंठे में ही स्थित हैं। वही निर्माण, पालन तथा संहार का उद्गम स्थान है और अध्यात्म का आरम्भ, मध्य व अन्त है। जैसे कीचड़ में खिलकर भी कमल उससे अछूता रहता है उसी तरह से गुरुचरणसेवी, समाज तथा संसार की चमकदमक से अभिभूत होकर भी, अपनी चेतना और आन्तरिक पवित्रता के कारण उससे अछूता रहता है। इस प्रकार के साधक की संपूर्ण कामनायें स्वयं ही पूर्ण होती हैं, और वह आध्यात्मिक उत्थान का पात्र बन जाता है। वह सबों को अपनी महिमा से प्रभावित करता है। वह सर्वज्ञाता, सर्वव्यापी और सर्वशक्तिशाली हो जाता है। यहां तक कि सारी प्रकृति उसके संकेतों पर नाचती है। इसीलिए शास्त्रों में कहा है कि गुरुमन्त्र शब्दों का समूह मात्र न हो विभिन्न आयामों से युक्त ब्रह्माण्ड का मूलं तत्त्व है। हमें समाहित चित्त होके अपना सर्वस्व सद्गुरु पर न्योछावर करना चाहिए तभी हमारी सारी साधनायें सफल हो सकती हैं। हमें मनसा वाचा एवं कर्मणा शुद्ध व्यवहार को अपनाना चाहिए और अपने अन्तःकरणत्रय को सदा सद्गुरु में लीन करना चाहिए तभी हम साधना क्षेत्र में प्रवृत्त होने के अधिकारी समझे जायेंगे। अनिश्चयता से दूर रहकर हमें अपने निश्चय को सुदृढ़ बनाना चाहिए। परनिन्दा परदोषांकन और परस्पर वैरभाव को सदा हृदय से उखाड़ फेंकना चाहिए। सद्गुरु महाराज कहा करते थे कि हमें अपने गुरु भाइयों के आहार विहार पर दृष्टि न डालकर सदा गुरु पर ही अवहित हो के दृष्टि रखनी चाहिए। केवल सूक्ष्मविवेचन वाला एवं प्रज्ञावान व्यक्ति ही इस साधना में सफल हो सकता है। जो नवीन प्रश्न हमारे मस्तक पटल पर क्षण-क्षण के पश्चात् दस्तक देते हैं हमें उनका समाधान अपनी निश्चयात्मिका बुद्धि से समय-समय पर करना चाहिए। हमें गर्व होना चाहिए कि हम उस सद्गुरु की पौध हैं जिनकी फलवर्षा से हमारा जीवन पूर्ण एवं सार्थक हो गया है। हमें वह कार्य पूरी लगन से सम्पन्न करना चाहिये जो सद्गुरु महाराज ने हमें सौंपा है, क्योंकि गुरुकार्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष में आनाकानी करने वाला भीषण नरकों का भागी होता है।

यह पढ़कर मालिनी परिवार प्रसन्न होगा कि—अपने सद्गुरु महाराज की महिमा का गुणगान करने के लिए तथा उनके अमृतपूर्ण उपदेशों का प्रचार करने के लिए, मैं सद्गुरु महाराज की ही दया से, भारत से बाहिर स्विटज़रलैंड आदि यूरोपीय देशों में वहां के एक लोक-प्रतिष्ठित संस्थान के निमन्त्रण पर, पिछले सितम्बर-अक्टूबर मास में गया था। वहां की जनता स्वामी जी महाराज के उपदेशों वाक्यों, तथा उक्तियों का श्रवण कर भावविभोर हो उठी। श्री अमृतेश्वर-भैरव मन्त्र तथा उसका आन्तरिक भावार्थ सुनकर तीस भिन्न-भिन्न यूरोपीय देशों से आये हुए, तथा जापान, कनेडा, अमेरिका, बाली (इण्डोनेशिया), न्यूजीलैंड, और आस्ट्रेलिया के तीन सौ पच्चीस सदस्य मुग्ध होकर इसी मन्त्र का निरन्तर गुणगान करने लगे। सम्मेलन के अन्त पर एक पर्वत शिखर पर महान् यज्ञ जगत् कल्याण के लिए रचा गया और अन्त में, हमने अमरनाथ, अमृतेश्वर भैरव मन्दिर (निशात श्रीनगर-ईश्वर आश्रम) और ऋषीकेश से लाई गई पवित्र मिट्टी, स्विटजरलैंड के एक भव्य पर्वत पर बिखेरी। इस पवित्र मिट्टी के साथ-साथ उन सभी देशों से लाई गई मिट्टी भी वहीं डाली गई जो उपस्थित सदस्यों ने अपने-अपने देशों से बैगों में लाई थी। इसके अतिरिक्त मैंने वहां शैवदर्शन सम्बन्धित तीन भाषण, अलग-अलग स्थानों पर दिये जिनका विषयवस्तु सबों ने अतीव सराहा, क्योंकि इन भाषणों का चयन सद्गुरु महाराज के मुखमण्डल से समय-समय पर उद्भूत वाक्यामृतों से ही मैंने किया था। वास्तव में ये भाषण "त्वदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये" इस वाक्यांश पर पूर्णतया चरितार्थ होते थे। जय गुरुदेव।

शोकसन्तप्त हृदय से यह लिखते हुए महान दुःख हो रहा है कि हमारे मालिनी सम्पादक मण्डल का एक वरिष्ठ सम्पादक, अनुभवी लेखक, सफल संयोजक, कुशल व्याख्याता, समीक्षक और योग्य अनुवादक हमसे सदा के लिए बिछुड़ गया। १५ अक्टूबर, १९९८ को एक सड़क दुर्घटना में, जम्मू में हुए, उनके आकस्मिक निधन से हम शोक के अपार पारावार में डूब गये। उनकी आत्मा को सद्गुरु शान्ति प्रदान करे, यही हमारी मनोकामना है।

मुक्तहस्त आर्थिक अनुदान देने वाले भक्तजनों का हार्दिक आभार प्रकट करके हम पुनः यह सूचित करते हुए प्रसन्न हो रहे हैं कि उनका दिया हुआ आर्थिक अनुदान आयकर सीमा (Income Tax Act - 80-G-1961) के अनुच्छेद के अन्तर्गत आयकर से मुक्त समझा जायेगा।

समस्त ईश्वराश्रम परिवार को नववर्ष की हार्दिक शुभकामनायें।

जय गुरुदेव।

प्रो० मखनलाल कुकिलू

जनवरी १९९८

ŚIVA-SŪTRAS

with Vimarśinī Sanskrit Commentary of Śrī Kṣemarāja

III

Translated by
Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa Joo Māharāj

(Continued from last issue)

अथ च 'आत्मा क' इति जिज्ञासून उपदेश्यान् प्रतिबोधयितुं, न शरीर-प्राण-बुद्धि-शून्यानि लौकिक-चार्वाक-वैदिक-योगाचार-माध्यमिकादि अभ्युपगतानि आत्मा; अपितु यथोक्तं चैतन्यमेव। तस्यैव शरीरादि कल्पित प्रमातृपदेऽपि अकल्पित अहं विमर्शमय-सत्य प्रमातृत्वेन स्फुरणात्। तदुक्तं श्रीमृत्युजित्भट्टारके–

परमात्मस्वरूपं तु सर्वोपाधि विवर्जितम्।
चैतन्यं आत्मनो रूपं सर्वशास्त्रेषु पठ्यते॥
इति। श्रीविज्ञानभैरवेऽपि–
चित्धर्मा सर्वदेहेषु विशेषो नास्ति कुत्रचित्।
अतश्च तन्मयं सर्वं भावयन् भवजित् जनः॥

इति। एतदेव–"यतः करणवर्गोऽयं" इति कारिकाद्वयेन संगृह्य उपदेश्यान् प्रति साभिज्ञानं गुरुणा उपदिष्टं श्रीस्पन्दे।

अथच–now we will explain the Sūtras in another way:—

"आत्मा क"–who is self, इति जिज्ञासून–to the inquisitive उप-देश्यान्–disciples, प्रतिबोधयितुं–in order to explain, i.e. when a master teaches his disciples and asks him who is self? The disciple explains:—

न शरीर–body is not self, न प्राण–the vital breath is not self, न बुद्धि–intellect is not self, न शून्य–nor the void is self, लौकिक–this universe is not self चार्वाक–the tradition of atheists is not self, वैदिक–the tradition of Vedas is not self, योगाचार–the tradition of Buddhists is not self, माध्यमिक–the tradition of माध्यमिक–some other school of Buddhists, is not self. आदि–etc., अभ्युपगतानि–as accepted, आत्मा–self. (Note:- other commentators have connected लौकिक, चार्वाक, वैदिक, योगाचार, and माध्यमिक, with शरीर, प्राण, बुद्धि, and शून्य, but Svāmīji has not followed that). अपितु

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज

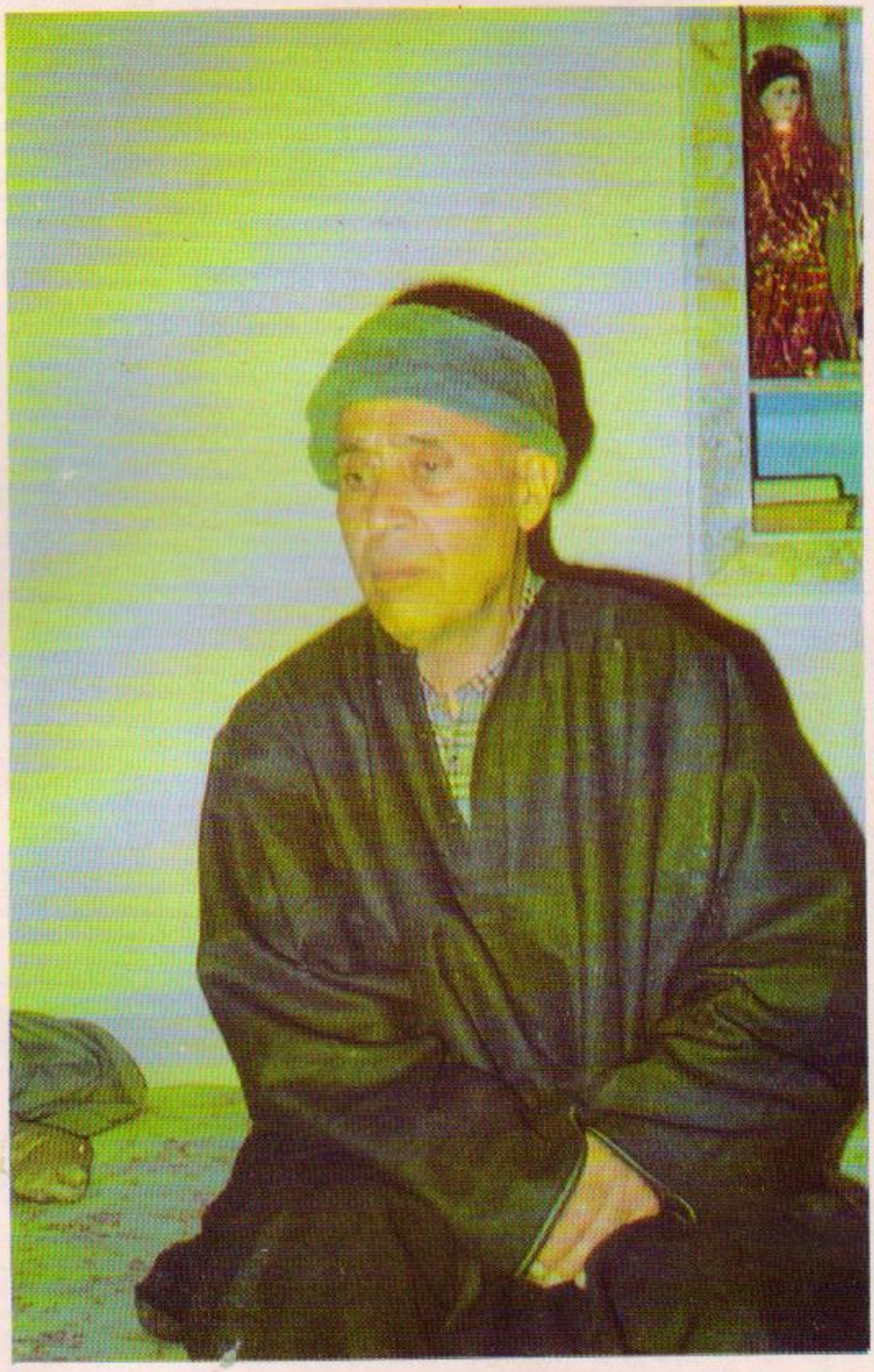

आविर्भावदिवस
9-5-1907

महासमाधिदिवस
27-9-1991

यथोक्तं–but as has already been said, चैतन्यमेव–independent Supreme God Consciousness is self nothing else. तस्यैव शरीरादि कल्पित प्रमातृपदेऽपि अकल्पित अहं विमर्शमय सत्य प्रमातृत्वेन स्फुरणात्–and then that god consciousness if that is found in individual state of शरीर, बुद्धि, प्राण and शून्य also, then in शरीर–body, he is above body, in प्राण he is above प्राण, in बुद्धि he is above intellect, in शून्य he is above full, and in nothingness he is everywhere, and it is the reality of universal "I".

तदुक्तं–as has been said, श्रीमृत्युजित्भट्टारके–in नेत्रतन्त्र i.e. मृत्युजित्भट्टारक also says the same :—

चैतन्यं आत्मनो रूपं–this independent supreme state of god consciousness is the स्वरूप of self, सर्वशास्त्रेषु पठ्यते–it is found in every शास्त्र, परमात्मस्वरूपं तु–and that is the reality of परमात्मा, सर्वोपाधि विवर्जितं–that is beyond all coverings, it is not covered by anything, it is fully exposed श्रीविज्ञानभैरवेऽपि–Vijñāna Bhairava also says in the same way:—

सर्वदेहेषु–in each and every being or body, विशेषोनास्तिकुत्रचित्–there is no difference in it anywhere, चिद्धर्मा–you will find independent state of god consciousness, अतश्च तन्मयं सर्वं भावयन्–why not to concentrate on the totality of individuality, the state of universal consciousness. भवजित् जनः–if it is done, one conqures the differentiated state of world. He is carried above the individuality of consciousness.

एतदेव–the same thing is कारिकाद्वयेन–in the following two kārikās, संगृह्य–after summarizing, उपदेश्यान् प्रति–to the disciples, साभिज्ञानं–with an illustration, गुरुणा–by the great master वसुगुप्त, उपदिष्टं–exposed, श्रीस्पन्दे–in the Spanda Kārikās

In order to explain the divine self, when a teacher teaches to the inquisitive disciple and asks him who is self? The disciple explains that body is not self, the vital breath is not self, intellect is not self, void is not self, the universe is not self, the tradition of atheists is not self, the tradition of Vedas is not self, the tradition of Buddhists is not self. The tradition of Mādhyamika is not self but independent Supreme God-consciousness is self and nothing else. Even those disciples who imagine the body etc. to he the self, the fundamental pure consciousness shines forth as the true subject or self by natural original I consciousness. As has been said in नेत्रतन्त्र that the independent supreme state of god-consciousness is the

स्वरूप of self. It is found in every शास्त्र and that is the reality of परमात्मा, that is beyond all coverings, it is fully exposed. Vijñānabhirava also says in the same way that in each and every being or body you will find independent state of god consciousness. Why not to concentrate on the totality of individuality—the state of universal consciousness. If it is done, one conquers the differentiated state of world. He is carried above the individuality of consciousness. The same thing is exposed by the great teacher वसुगुप्त to the disciples in the following two kārikās (verses) of the Spandakārikā:—

यतः करणवर्गोऽयं–

take the class of organs. The class of organs of cognition and class of organs of action. You find in them the supreme independent state of God consciousness, if you go deep and meditate in actions of these organs.

Another way of explanation of this Sūtra is :—

किंच तदेतत् चैतन्यम् उक्तं स एव आत्मा-स्वभावः, विशेषाचोदनात् भावाभावरूपस्य जगतः। नहि अचेत्यमानः कोऽपि कस्यापि कदाचिदपि स्वभावो भवति। चेत्यमानस्तु स्वप्रकाश विवेकी भूतत्वात् चैतन्यात्मैव।

किंच–morever, तदेतत्–the aforesaid, चैतन्यं–consciouness, उक्तं–is said आत्मा-स्वभावः–the आत्मा or nature of the भावाभावरूपस्य विश्वस्य जगतः–entire world consisting existent objects or non existent objects. विशेषाचोदनात्–there is not mention in the Sūtras of the self of any particular being. नहि अचेत्यमानः कोऽपि कस्यापि कदाचिदपि स्वभावो भवति–नहि–nothing अचेत्यमानः–without the light of consciousness. कदाचिदपि–can ever have. कस्यापि स्वभावः–its own being. चेत्यमानस्तु–being experienced, चैतन्यात्मैव–it is of the nature of consciousness itself, स्वप्रकाश विवेकीभूतत्वात्–because of its being similar to that light.

Morever the aforesaid consciousness is said to be the nature of the whole world of non-existant and existant, because there is no mention in the Sūtras of the self of any particular being. Nothing can ever have its own being without the light of consciousness. Being experienced it is of the nature of consciousness itself because of its being similar to that light. This Supreme independent state of god consciousness is the form of everything but it is not defined wherefrom i.e.from non-existant world or existant

world. You must conclude that there is the form of everything even milk of bird or a son of baronlady, it is existing in that supreme state of god consciousness because of our thinking taking place in our consciousness. Whatever you think or not that exists in god consciousness. तदुक्तं श्रीमत् उच्छुष्मभैरवे–As is said in Ucchuṣmabhairava.

यावन्न वेदका एते तावत् वेद्याः कथं प्रिये।
वेदकं वेद्यमेकं तु तत्त्वं नास्त्यशुचिस्ततः।।
इति। एतदेव
यस्मात्सर्वमयो जीवः—

इति कारिकाद्वयेन संगृहीतम्। प्रिये–O dear one, यावत् न–unless these are, वेदका–knower of the objects, तावत् वेद्याः कथं–how can these be the objects known वेदकं वेद्यं एकं तु तत्त्वं–because knower and the known are really the same objects. When they are one there is nothing wrong or right. (नात्स्यशुचिस्ततः) एतदेव–the same idea has been expressed in the following two verses of Spandakārikā (इतिकारिद्वयेन संगृहीतम्)

यस्मात्सर्वमयोजीवः–There is no state which is not Śiva, etc.

As is expressed in Ucchuṣmabairava that unless there are knowers of the objects how can there be the objects known. Because knower and the known are really the same objects. When they are one there is nothing wrong or right. The same idea has been expressed in the following two verses of Spandakārikā that there is no state which is not Śiva.

यतः चैतन्यं विश्वस्य स्वभावः तत एव तत्साधनाय प्रमाणादिवराकं अनुपयुक्तम्। तस्यापि स्वप्रकाश चैतन्याधीन सिद्धि कत्वात्, चैतन्यस्य च प्रोक्तयुक्त्या केनापि आवरीतुं अशक्यत्वात् सदा प्रकाशमानत्वात्। यदुक्तं श्री त्रिकहृदये–

यतः चैतन्यं–because independent Supreme state of God consciousness, विश्वस्य स्वभावः–is the formation of the universe, तत एव तत्साधनाय प्रमाणादिवराकं अनुपयुक्तं–so how can you pick up some small means from the universe for achieving realization. तस्यापि स्वप्रकाश चैतन्याधीन सिद्धि-कत्वात्–प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि

Whatever means you take from the universe they are filled with god consciousness. They are not means, they are meant, dependent to univer-

sal state of God consciousness. If for the time being you say these things are not filled with God consciousness even then they cannot exist. चैतन्यस्य च प्रोक्तयुक्त्या केनापि आवरीतुं अशक्यत्वात् सदा प्रकाश मानत्वात्–this Supreme state of God consciousness can not be covered by any other agency because that too is filled with Supreme state of God consciousness यदुक्तं श्री त्रिकहृदये–this is also said in the heart of त्रिकः–

स्व पदा स्वशिरच्छायां यत् वत् लंघितुं ईहते।
पादोद्देशे शिरो न स्यात् तथेयं बैन्दवी कला॥

यत्वत्–just as when one लंघितुं ईहते–tries to jump over स्वशिरच्छायां–the shadow of one's head, स्वपदा–with one's own feet शिरो–the head नस्यात्–will never be, पादोद्देशे–at the place of one's feet, तथा–so also is इयं–this बैन्दवी कला–the शक्ति of highest knower.

You must know the state of supreme independent God-consciousness exists in the same way as shadow of your head. Cross it or overcome it by your footsteps you never cross that shadow. In the same way supreme state of God consciousness cannot be realized by any agency which is filled with individual God consciousness. So it cannot be realized by any agency. It never comes in objective state. It is never realized it is the state of realizer.

अनेनैव आशयेन स्पन्दे–with this intent in Spandakārikā.

यत्रस्थितम्––इत्यादि उपक्रम्य

तदस्ति परमार्थतः॥ इत्यन्तेन महता ग्रन्थेन शंकरात्मक स्पन्दतत्त्वरूपं चैतन्यं सर्वदा स्वप्रकाशं परमार्थसत् अस्ति इति प्रमाणीकृतम्॥

इति प्रमाणीकृतं–it has been proved, महताग्रन्थेन–by a great many verses चैतन्यं–that consciousness is शंकरात्मक–divine, and स्पन्दतत्त्वरूपं–the principle of स्पन्द and that चैतन्य is स्वप्रकाशं–ever self luminous and परमार्थसत्–the highest reality. The verse इत्यादि उपक्रम्य–begins with यत्रस्थितं and इत्यन्तेन–ending with तदस्ति परमार्थतः, means that from which everything arises–that indeed is absolute Reality.

In Spanda also it is exposed in these verses यत्रस्थितं etc. In which state the whole universe is existing that is in real sense the reality of being.

Hence it is concluded that the reality of the Supreme movement of शंकर Consciousness is in the state of movement, it is not situated at one place, it is situated every where. Wherever there is space it is situated there. Where there is not space it is situated there too, in space and beyond that.

to be continued

KĀLĪ IN TANTRĀLOKA

Dr. B.N. Pandita

(Continued from last issue)

Abhinavagupta quotes many prose and verse passages from some works written in the language of the common people of Kashmir prevalent in that country at the time of the academic evolution of Kālīnaya. The names of the authors of such passages and those of the works from which these passages were quoted by him have not been mentioned. Even the educated female folk from upper-most classes of society used to prefer the use of Prākṛta to that of Sanskrit in ancient times. It is highly probable that the three female disciples of Śivānandanātha preferred to write and to speak in the language of the common people and the quotations preserved by Abhinavagupta in his Tantrasāra and the Vivaraṇa on Parātrīmśikā may have been taken by him from the written works or sayings of Madanikā into whose line of disciples he had attained admission. Some of such passages may have belonged to any of the other two yoginis.

A practitioner of Kālīnaya had to visualize the powers of his own consciousness as the twelve Kālīs absorbing the whole existence consisted of pramātṛ, pramāṇa and prameya while contemplating himself as conducting creation, preservation, absorption and staying steady in absolute existence. He had to visualize himself as the master containing all such existence in his own self. Such contemplative meditation had to be conducted with respect to twelve aspects of Kālī, one by one, in a regular

शैवयोगी की महासमाधि

पौषकृष्ण पक्ष नवमी तदनुसार २३ दिसम्बर १९९७ प्रातः चार बजे कश्मीर के प्रसिद्ध सन्त श्री रघुनाथ जी कुकिलू ने, जो बयगाश के उपनाम से विख्यात थे, निर्वाण प्राप्तकर अपनी दीर्घकालीन साधना में चार चांद लगाये। दैनिक अभ्यास व पूजा को समाप्त कर यथावत् दिन के तीन बजे, भक्तों व शिष्यों में प्रसाद बांटकर, भोजन के दो ही कौर पूर्ण किये थे कि अकस्मात् कुण्डलिनी शक्ति के आवेश से अभिभूत हुए। महात्रिपुरसुन्दरी का बाल्यावस्था से साधक, उसी को साक्षात् रूप में सामने पाकर, उसके अप्रतिहत प्रकाश पुंज से छटपटा उठे और तीन बार आर्त व करुण स्वर में उसे बुला-बुलाकर सदा के लिए मौन हुए। सिन्दूर वर्ण की लालिमा से आलोकित बना मुखमण्डल चिताग्नि के प्रकाश के साथ एकाकार होकर महाशून्य में विलीन हुआ। बाह्य शरीर का अस्तित्व सदा के लिए शान्त हुआ पर आभ्यन्तर ज्योति सदा के लिए प्रज्वलित हो उठी। 'मोक्षोहि नाम नैवान्यः स्वरूप प्रथनं हि सः" आचार्य अभिनवगुप्त के कथनानुसार अन्तकाल पर स्वरूप साक्षात्कार की पूर्णप्राप्ति से मोक्ष की सार्थकता को इस शैवयोगी ने सिद्ध किया। सम्पूर्ण भू-खण्ड के एकमात्र शैवाचार्य ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज के अनन्य प्रेमी योगी रघुनाथ जी को ईश्वरस्वरूप ने सदा आदर की दृष्टि से देखा और अपने से अभिन्न माना। अपने जन्मोत्सव पर सदा इनसे आशीर्वाद प्राप्त कर ईश्वरस्वरूप सायं रास क्रीडा में तल्लीन होते थे और आवेश के आवेग में इनके साथ-साथ उन्मज्जन-निमज्जन में व्यस्त रहते थे।

शाक्तक्रम के निष्णात उपासक योगी रघुनाथ जी इस क्रम की बारीकियों और विशेषताओं को जिस रीति से जानते थे शायद ही दूसरा कोई उनके समकक्ष था। दिवंगत श्री जानकी नाथ कौल "कमल" ने भवानी नाम सहस्रस्तुतिः के समीक्षात्मक संस्करण में इनसे प्राक्कथन लिखवाकर तथा इनके कथन के अनुरूप अनुभव के आधार पर संशोधन कराके भावी शाक्त साधकों का महान् उपकार किया। इनकी पांचरात्रपूजा, जो शिवरात्रि उत्सव पर हुआ करती थी, कश्मीरशैवीपरम्परा की प्रतीक और शाक्त क्रम से अनुस्यूत थी। ये योगाभ्यासी होने के साथ-साथ प्रसिद्ध दैवज्ञ भी थे और सभी भक्तों शिष्यों और शरणागतों की समस्याओं का मृदुमुस्कान से समाधान करते थे।

सारी भक्त जनता विशेषकर कश्मीरी पंडित समुदाय, इनकी प्रेरणा के अभाव में सदा चिन्तित रहेगा। समस्त मालिनी परिवार शोक सन्तप्त कुटुम्ब के साथ हार्दिक सहानुभूति व्यक्त करके परमशिव से प्रार्थना करता है कि मुक्तात्मा को सद्गति प्रदान करें और आश्रितभक्तों का सन्मार्गप्रदर्शन करें।

जय गुरुदेव।

'तीर्थे श्वपचगृहे वा
नष्टस्मृतिरपि परित्यजन् देहम्।
ज्ञानसमकालमुक्तः
कैवल्यं याति हतशोकः।।'

The realized soul may throw off his physical body in a sacred pure shrine or in the house of a very degraded and low caste or while leaving his body may remain in the state of unconsciousness, he is absolutely united in God-Consciousness. Hence these things do not affect him in the least.

order of succession. Order of succession is called Krama in Sanskrit. Therefore Kālīnaya had got the name Kramanaya long before Abhinavagupta. Certain philosophic works had appeared on the system of such contemplative yoga and Krama had become its popular name. Some of such works are Kramasadbhāva, Krama-sūtra and Krama-stotra, most of which have now been lost. Such Krama-method of Śāktopāya became so much popular by the time of Jayaratha (12th century) that he counted Krama as an independent system of theology, like Trika and Kula systems. He refers to many works on the system and quotes some of them quite profusely in his commentary on Tantrāloka. Since the work Krama had become the popular name of the Kālī worship of the Trika system, Siddhanātha (10th century) named his eulogy of Kālī as Kramastotra. This Siddhanātha was the same Śambhunātha of Jālandharapīṭha (Kāṅgrā) to whom Abhinavagupta pays very high tribute as a master of Kula and Trika systems, in his several works. Prithvīdhara, the author of Bhuvaneśvarī-stotra, calls him by both such names. He says:—

O Compassionate Siddhanātha, alias Śambhunātha,

O Compassionate Śambhunātha alias Siddhanātha. (Bh. St. ---)

Being a perfect Siddha, he was popularly called Siddhanātha, the master of Siddhas. Abhinavagupta wrote a detailed commentary on the Kramastotra of this Siddhanātha under the title Kramakeli. Both such important works have now been lost. Jayaratha has preserved fourteen verses of Kramastotra and a few pages of Kramakeli by quoting them in his commentary on Tantrāloka. Abhinavagupta wrote another Kramastotra which is available but does not bear any commentary. Jayaratha quotes passages from some ancient text named Pañcaśatikā while discussing the nature of each of the twelve Kālīs. Besides, he quotes at one place another such text under the name Sārdhaśatikā. Tantrarāja-bhaṭṭāraka is another ancient text mentioning the twelve aspects of Kālī. The description of such Kālīs is found in Cidagagana-candrikā of Śrīvatsa, whose name has wrongly been said to be Kālidāsa by the editors who were misled by the copyists. Jayaratha mentions the names of many teachers and authors who had appeared in the lines of the disciples of Śivānandanātha and quotes passages from the works of some of them. He refers to Śivānandanātha as Avatārakanātha, the teacher who brought down to this world the elaborate

system of Kālīnaya. Keyuravati has been mentioned by him as Kakāradevī, that is, a yogini whose name starts with `Ka'. That is to show high respect to both these ancient preceptors of Kālīnaya.

Kālī worship in Bengal and many other parts of India is ritualistic in character and Kālī is a divine form of Durgā and is worshipped as a deity who saves human beings from demons. Kālī with the aboriginal people of India is a blood-thirsty terrible deity worshipped through animal sacrifice. Such character of Kālī is partly existent in Bengal as well, but generally she has been a favourite deity of warrior class. Kālī in Kashmir Śaivism is neither a blood thirsty deity, nor the destroyer of demons. She is the destroyer of the finitude that reduces us to the position of finite beings and puts us in the miserable transmigratory existence. Being worshipped through a special type of self contemplative meditation, she reveals to her devotees their hidden God-head and they recognize themselves as none other than the Almighty God having Kālī as their own divine power. Kālī in Kālīnaya is thus that absolute God-head which we have to recognize as our basic nature. We have to discover her like that through a special type of contemplative practice without sacrificing any animals at her feet. Kālī worship in Kashmir Śaivism is thus a higher type of contemplative meditation which is subjective in character and which can reveal to us our pure, infinite and divine nature.

Kālī of Kashmir Śaivism has been eulogized by many Siddhas in her twelve main aspects personified as deities with different symbolic names and forms. Meditation on such forms serves as an aid to the self-contemplation upon the twelve aspects of one's divine nature. Some Siddhas have added the absolute Kālī, who appears in such twelve aspects, as the thirteenth one. Some of the aspects of Kālī have been given different names by different authors. Some authors have formed the concept of an additional Kālī in between two of them and such things may create doubts and suspicions in the minds of some readers. They should consider the fact that all such analysis is based on minute analytical thinking of philosopher saints and is not the absolute truth. Such truth is the main Kālī, the absolute Godhead of the monistic absolute reality. It can be analysed into as many aspects as a highly intelligent practitioner may work out through minute analytical thinking. The contemplative meditational path of such Śākta-

upāya takes into account the above mentioned twelve aspects of Kālī and such aspects of the absolute Godhead constitute the Śakti-cakra which is meditated upon in Dhyānayoga of the Āṇava-upāya of the Trika system of Kashmir Śaivism.

Many research scholars of the present age have been making a mountain of the mole of the use of the word Kramadarśana by some ancient authors. They are, besides, misled by such statements of Jayaratha and mention Krama system as different from and independent of Trika system. The pioneer research scholars, who worked on Kashmir Śaivism, committed some mistakes. Such a thing on their part was quite natural, because they did not have the means to grasp everything correctly. It should have been the duty of later scholars to correct the mistakes committed by Shri J.C. Chatterjee and Dr. K.C. Pandey. But generally they have not been doing it. Such a thing has been adding to the confusion caused by such short-comings in the beginning of the modern type of research on Kashmir Śaivism.

Analysis of Kashmir Śaivism into three schools of Āgama, Pratyabhijñā and Spanda is one item of such confusion. One more such confusion is the recognition of Krama system as different from Trika system. The third great confusion is to correlate Āgama, Pratyabhjñā and Spanda schools of philosophy with Kula, Trika and Krama systems of practice respectively. As has been discussed in some previous pages, Krama is a part and parcel of the Trika system and is the most important method of Śākta-upāya. It is a part and parcel of Śāmbhava upāya and Dhyāna yoga of the Āṇava upāya as well and cannot therefore be taken as a system separate from Trika. Āgamic passages counting such systems do not mention Krama as such. Both Pratyabhijñā and Spanda are just two important topics of one and the same Śaiva monism of Kashmir and Āgama-śāstra is the scriptural source of both such topics and other principles of that philosophy. It is however hoped that scholars will think about such facts and proceed on cent percent correct lines of thinking with regard to both theory and practice of Kashmir Śaivism.

विद्वान् संगीसाथी बिछुड़ गया

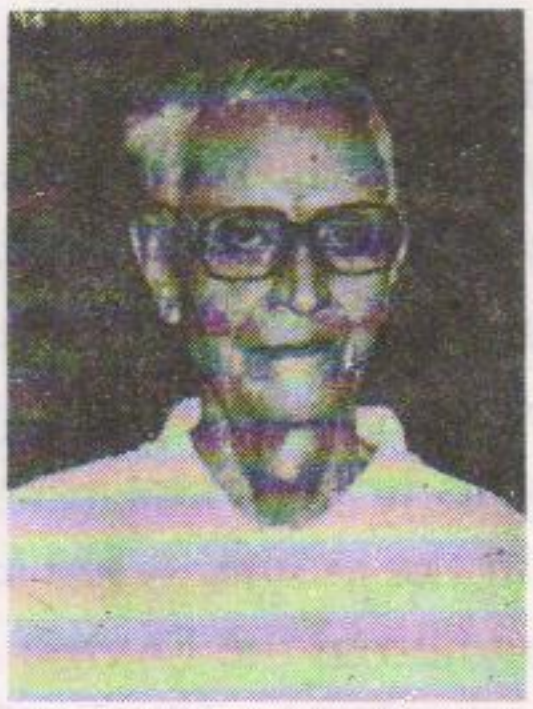

'मालिनी' का परिवार शोकाकुल होके बिलखने लगा जब परिवार का एक वरीयता प्राप्त विद्वान् संगी अचानक हम से बिछुड़ गया। कितना ही शोचनीय था अक्टूबर १९९७ का पन्द्रहवां दिवस जब वज्रपात जैसी सौम्यसन्त श्री कौल के महाप्रयाण की दुःखद सूचना पौ फटते ही हमें प्राप्त हुई। श्री जानकीनाथ कौल 'कमल' पिछले तीन दशकों से हमारे संग उठे बैठे और विभिन्न अवसरों पर समायोजित सम्मेलनों सभाओं और गोष्ठियों के भागीदार रहे। समय-समय पर इनके परिपक्व सुझावों ने हमें सही रास्ता दिखाया और आगे के लिए भी मार्ग सरल बनाया। इनकी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता ने सदा हमारी सहायता की। ये नीलकंठानन्द सरस्वती के प्रिय शिष्य थे और उन्हीं की प्रेरणा से ईश्वर-आश्रम निशात कश्मीर में आदरणीय गुरुवर्य स्वामी लक्ष्मणजू महाराज के विशेष स्नेहभाजन बने। श्री कमल को स्वामी जी वेदान्ती विद्वान् के नाम से प्रायः पुकारते थे। गृहस्थी सन्त ईशबरवासी श्री सतराम जी के सम्पर्क में रहकर इन्होंने वेदान्तदर्शन की गहराइयों से पूर्ण परिचय प्राप्त किया था। शैवदर्शन केसरी स्वामी जी के सान्निध्य में रहकर शैवशास्त्रों के ज्ञाता बनकर 'शिवसूत्रों' का व्याख्यात्मक अनुवाद भी कर बैठे। हाल ही में "भवानी सहस्त्रनाम स्तुतिः" और "पंचस्तवी" जैसी शाक्तक्रम की रचनाओं का समीक्षात्मक भाष्य लिखकर शाक्तक्रम को जीवित रखने वाले "कमल" जी ने श्रीविद्या के उपासकों को दो अमूल्य रत्न भेंट किये। आने वाली पीढ़ियां इनके इस उपकार से सदा कृतकृत्य रहेंगी। ओजस्वी अध्यापक होने के साथ-साथ ये आदर्श शिक्षाशास्त्री थे। त्रिभाषाविद् होने के नाते इनकी हिन्दी-कश्मीरी भाषा में लिखी कवितायें भी सर्वप्रिय रहीं। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के "सौहार्द सम्मान से पुरस्कृत तथा विगत वर्ष में राष्ट्रपति महोदय से वयोवृद्ध संस्कृत पण्डित के रूप में सम्मानित श्री "कमल" अपनी विद्वत्ता पर कभी गर्व नहीं करते थे। श्री 'कमल' सरल स्वभाव, सरल वेषभूषा मधुर मन्द-मुस्कान और सौम्य व्यवहार के कारण ईश्वराश्रम के सारे भक्तजनों के चहेते थे। श्री 'कमल' सन् १९६५ अप्रैल से ईश्वराश्रम निशात कश्मीर से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिकी दार्शनिक पत्रिका 'मालिनी' के सक्रिय सम्पादक थे। मालिनी के पाठकगण इनकी रचनाओं, सारगर्भित लेखों, और अनुवादों से तीन सालों से निरन्तर अभ्यस्त होकर रसास्वादन करते थे। इनकी निर्वाण प्राप्ति से इनके बहुमूल्य लेखों का अभाव पाठकों को सदा खटकता रहेगा।

ईश्वराश्रम का समस्त परिवार इनके अकृत्रिम योगदान के लिए सदा ऋणी रहेगा।

सद्गुरु महाराज इनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

जय गुरुदेव

संपादक

SANGRAHASTOTRA OF UTPALADEVA

A mystic saint of Kashmir

Late Jankinath Kaul `Kamal'

The lyrical songs of Utpaladeva, one of the most important Śaiva mystics of Kashmir, are pithy. When recited, they pierce the inner recesses of the heart of a devotee, who, by divine grace, is endowed with superfine intellect. Utpaladeva sang these notes in an ecstatic delight, while maturing in the experience of the Divine. His own feelings and emotions, joys and sorrows and, above all, the intense longing as an aspirant (earnest seeker of spiritual Truth), are vividly pictured in these lyrics. He sang, rather uttered, not for others but for himself, drowned in the Divine. It is said that these outpourings were recorded and compiled by his disciples and consolidated by Viśvāvarta. This compilation was named Śivastotrāvalī - a book of hymns to Lord Śiva.

Sangrahastotra, as the thirteenth hymn is captioned, is the most popular of the twenty. It is the essence of the profound and sweet pieces. The melodious sounds in the original are soothing and one gets transformed with ecstasy. Yet, when recited with devotion, while dwelling upon the meaning, the hymn leaves the heart throbbing and the eyes trickling with joy inexpressible. All the experiences of pleasure and pain are dissolved and one awakes in the Universal happiness of the Supreme Consciousness.

Translations into Kashmiri, Hindi and English languages of this hymn, in particular, have been attempted by devotees to make the aspirations and experiences mentioned therein comprehensive for the common people with whom earnest devotees want to share their joys in universal understanding. Here, another attempt of translating the hymn is made, especially after having studied it at the all loving and blessed lotus feet of Svāmī Lakṣmaṇa Joo, the doyen of Śaiva mysticism and exponent of Kashmir Śaivism, who, while reciting and explaining the hymn in fact the whole Śivastotrāvalī was transported into joy drenched in ecstasy.

संग्रहस्तोत्र

SANGRAHASTOTRA
HYMN IN CONFIDENCE (TO LORD ŚIVA)

संग्रहेण सुखदुःखलक्षणं मां प्रति स्थितमिदं श्रृणु प्रभो।
सौख्यमेष भवता समागमः स्वामिना विरह एव दुःखिता॥ १॥

O Lord! I relate in Thee my state of pleasure and pain in confidence.
Just be on any side for a while -
And Lo! this Being in Thee is pleasure (joy) for me
Bereft of Thy Grace, I suffer pain.

अन्तरप्यतितरामणीयसी या त्वदप्रथनकालिकास्ति मे।
तामपीश परिमृज्य सवंतः स्वं स्वरूपममलं प्रकाशय॥ २॥

Even the little haze obstructs the reflection of self. This also be kindly refined to serenity for Thou are the sole refuge to the surrendered.

By granting this vision reveal to me Thyself untainted.

तावके वपुषि विश्वनिभरे चित्सुधारसमये निरत्यये।
तिष्ठतः सततमर्चतः प्रभुं जीवितं मृतमथान्यदस्तु मे॥ ३॥

Established in thy Universal Self, sprinkled with nectar of Divine consciousness infallible. I desire to be ever worshipping thee.

Be aware always of the Supreme Conscious Self.

This granted, life in this body may continue or extinguish or even salvation, may be the lot, I little mind.

ईश्वरोऽहमहमेव रूपवान् पण्डितोऽस्मि सुभगोऽस्मि कोऽपरः।
मत्समोऽस्ति जगतीति शोभते मानिता त्वदनुरागिणः परम्॥ ४॥

"I am the Lord, the final beatitude, knowledge absolute and supreme charm, Nothingness shines in Supreme Consciousness". Thus assert Thy devotees with utmost confidence, while being equipoised in Thee.

देवदेव भवदद्वयामृताख्यातिसंहरणलब्धजन्मना।
तद्यथास्थितपदार्थसंविदा मां कुरुष्व चरणार्चनोचितम्॥ ५॥

Therefore, O Lord! cast away my ignorance and reveal Thy benign universal consciousness unto me, to recognise Thee in all forms of cognition. Grant Thou to me this boon of severe cognizance.

ध्यायते तदनु दृश्यते ततः स्पृश्यते च परमेश्वरः स्वयम्।
यत्र पूजनमहोत्सवः स मे सर्वदास्तु भवतोऽनुभावतः॥ ६॥

Where concentration is ripe.
Where organs of cognition recognise Thee, both in and out,
Where Thy Grace embraces me unawares,
May that great occasion of worship ever favour me with Thy Grace alone.

यद्यथास्थितपदार्थदर्शनं युष्मदर्चनमहोत्सवश्च यः।
युग्ममेतदितरेतराश्रयं भक्तिशालिषु सदा विजृम्भते॥ ७॥

"There is naught but Thy experience, in the universe for those endowed with the knowledge of self."

"Thy worship is great celebration for those blessed by Thee". (Both the statements befit the persons whose intellect is refined par excellence with monistic devotion.)

तत्तदिन्द्रियमुखेन सन्ततं युष्मदर्चनरसायनासवम्।
सर्वभावचषकेषु पूरितेष्वापिबन्नपि भवेयमुन्मदः॥ ८॥

Drinking the nectarial juice of Thy worship contained in the cups of all objectivity through the mouths of my cognitive organs, let me ever roam, thus drunk deep.

अन्य वेद्यमणुमात्रमस्ति न स्वप्रकाशमखिलं विजृम्भते।
यत्र नाथ भवतः पुरे स्थितिं तत्र मे कुरु सदा तवार्चितुः॥ ९॥

Bereft of all individual cognitions, let Thy all pervading effulgence, blooming in every atom, be the state of my constant worship to Thee.

Where not even a trace of otherness exists, where self-luminosity is everywhere manifest.
There in your city
Let me reside
For ever as your worshipper.

Tr. by **T.R.C. RHODES BAILLEY.**
American Publication

दासघाम्नि विनियोजितोऽप्यहं स्वेच्छयैव परमेश्वर त्वया।
दर्शनेन न किमस्मि पात्रितः पादसंवहनकर्मणापि वा॥ १०॥

Least on my asking, O Lord! You gave to me awareness of the conscious self. But why doth Thou holdeth from me Thy Supreme Bliss, even Thy communication.

शक्तिपातसमये विचारणं प्राप्तमीश न करोषि कर्हिचित्।
अद्य मां प्रति किमागतं यतः स्वप्रकाशनविधौ विलम्बसे॥ ११॥

O Lord! never by mistake even do Thou discriminate in Thy favours. Why then dost Thou play will-o-the-wisp with me thus delaying Thy Grace.

तत्र तत्र विषये बहिर्विभात्यन्तरे च परमेश्वरीयुतम्।
त्वां जगत्त्रितयनिर्भरं सदा लोकयेय निजपाणिपूजितम्॥ १२॥

Dwelling deep in the recesses of my mind, may Thy reflection shine ever clear in the whole universe. Thus the Supreme Consciousness, actively reflecting in the enjoyments of all the three states (viz. waking, dreaming and deep sleep), would I, endowed with the fourth (state of Turya), experience Thy Being even in this world the juggler's show.

स्वामिसौधमभिसन्धिमात्रतो निर्विबन्धमधिरुह्य सर्वदा।
स्यां प्रसादपरमामृतासवापानकेलिपरिलब्धनिर्वृतिः॥ १३॥

Pray grant to me the entrance to Thy Divine Palace (i.e. Supreme Consciousness) so that I find access to it at my own will, and dance drunk-deep at Thy bidding.

यत्समस्त सुभगार्थवस्तुषु स्पर्शमात्र विधिनाचमत्कृतिम्।
तां समर्पयति तेन ते वपुः पूजयन्त्यचलभक्तिशालिनः॥ १४॥

Grant unto me the knack that enables Thy devotees shine divinised in the Supreme-Consciousness and just by mere touch (i.e. at the very first sight) realize the Universal Self.

स्फारयस्यखिलमात्मना स्फुरन् विश्वमामृशसि रूपमामृशन्।
यत्स्वयं निजरसेन घूर्णसे तत्समुल्लसति भावमण्डलम्॥ १५॥

This universe (animate and inanimate) has its evolution in Thy Divine rapture.

It is sustained and blooms in Thine Blissful Self.

In its evolution Thou art existence absolute Art thou not the sumum-bonum!

योऽविकल्पमिदमर्थमण्डलं पश्यतीश निखिलं भवद्वपुः।
स्वात्मपक्षपरिपूरिते जगत्यस्य नित्यसुखिनः कुतो भयम्॥ १६॥

Whence has he any fear (of birth and death) who with narrow impressions extinct, perceives Thee pervading the whole universe? Established in the Supreme-Consciousness he is, no doubt, happiness incarnate.

कण्ठकोणविनिविष्टमीश ते कालकूटमपि मे महामृतम्।
अप्युपात्तममृतं भवद्वपुर्भेदवृत्ति यदि रोचते न मे॥ १७॥

While in embrace (i.e. in tune) with Thee, O Lord! even the Kalakuta poison held in the side of Thy neck is nectar for me. But untouched by Thee, even nectar is undesirable to me. Being sad touching you. Is more beautiful than being happy anywhere else.

Tr. by **CAROL SCHNEIDER**

त्वत्प्रलापमयरक्तगीतिका नित्ययुक्तवदनोपशोभितः।
स्यामथापि भवदर्चनक्रिया प्रेयसीपरिगताशयः सदा॥ १८॥

May I, in perfect pathos, invoke Thee.
May I, with sincere love, describe Thy Being,
May I, with undaunted devotion, realize
Thy Blissful Divine Consciousness.
Let this beloved mood of worship ever favour me.

ईहितं न बत पारमेश्वरं शक्यते गणयितुं तथा च मे।
दत्तमप्यमृतनिर्भरं वपुः स्वं न पातुमनुमन्यते तथा॥ १९॥

O Lord of lords! Thy behaviour is divinely unique and beyond comprehension. Thou having revealed Thy Universal Self to me, dost Thou not let me stick fast to it. Thou hast blessed me with Thy nectarial cup of Bliss, no doubt, but why dost Thou hesitate in allowing me to drink it at my choice!

त्वामगाधमविकल्पमद्वयं स्वं स्वरूपमखिलार्थघस्मरम्।
आविशन्नहमुमेश सर्वदा पूजयेयमभिसंस्तुवीय च॥ २०॥

O Lord of Universe! Thou art beyond measure, Thou art above the waves of thought and action. Thy union casts off all differences (of mine and thine) appearing like a mountain and swallows all duality. I earnestly want to be absorbed into Thy Supreme Being so that self-realisation is my lot, both within and without.

Courtesy:
"Dilip" Mumbai
July/Sept 1996

SWAMI VIDYADHAR
Exponent of Śaivism

Sh. Nath Jee

Kashmir has been the cradle of the spiritual culture and great philosophies from the earliest times. The grandest Śaiva philosophy has originated here. Śaiva Trika Philosophy, is one of the most sublime aspect of the Kashmir Śaivism. One of the great Śaiva philosophers Swami Vidyadharji Razdan, was born on 13th day of Ashad, bright moon fortnight corresponding to July, 1885 in the Kaṇṭha dhoumyana Gotra at Sathu Payeen, Srinagar Kashmir. He was born in a well known Kashmiri Hindu Brahmin family. His father was a famous Karmakāṇḍī, due to which people from far and near places used to flock to him to seek his guidance in Karmakāṇd. As such he wanted his son Vidhyadharji to become another famous pandit in order to guide his fellow community members in Karmakāṇḍa aspect.

He admitted his son Vidyadharji in Rājkīya Pāthśālā (Sanskrit Unit) attached with Govt. High School, Dilawar Khan Shamaswari, Srinagar, wherefrom he passed the Viśārad Degree in Sanskrit.

His urge and thirst to learn more made him to seek guidance from Pandit Nityānand Shastri of Sathu Balla, Srinagar who was Head Pandit

in the Research and Publications Division of the State Government. It was here that books connected with Kashmir Śaivism were procured, printed and published.

Pandit Nitya Nand Shastri saw his love and thirst for Śaivism and he accordingly advised the young Vidyadhar to seek the further guidance from Śaiva Ācārya Swami Ramji Māhāraj whose famous Ram Śaiva Trika Ashram is situated at Fateh Kadal, Srinagar.

On a prefixed auspicious day Shri Vidyadhar went to Swami Ramji's Ashram and with reverence placed his head at his feet. Swami Ramji accepted him as his disciple and it was under his guidance that Shri Vidyadharji learned and practised the various aspects of the philosophy and Kashmir Śaivism.

According to this philosophy, the universal manifestation comprises of three ingredients called as Tattvas. The three Tattvas are recognised as (i) Śiva who is the imminent and the all prevading aspect of the reality (ii) Śakti-the dynamic energy aspect of the Reality and lastly (iii) The Nara, which represents the individual soul.

The all-pervading and imminent aspects of the Reality is in fact Param-Saiva.

On December, 1914, which happened to be his birthday Swami Ramji made a forecast that he would leave his mortal body very shortly. Hearing this, all his devotees including Swami Vidhyadharji were grief stricken but Swami Ramji consoled them all by saying that this was law of the nature.

One day when Swami Ramji was in a happy mood, Shri Vidyadhar requested his Guru that he should be beside him at that time. Swami Ram Ji replied laughingly, that he would be carrying Kangris (the fire pots) at that time at Habbakadal Bridge. His forecast came true as at the time of his attaining Mahanirvan, Shri Vidyadharji was actually carrying Kangris on the Makar Sankranti morning when he heard the sad demise of his Guru.

After about one year Shri Vidyadhar left his home for meditation in the forests. During the course of his meditation he went to Tral, Bijbehara,

Ganesh Bal, Veth Vathur, Rattnipora, Karkoot Nag, Kapal Mochan and Swami Amar Nath Ji's cave. During his stay at Karkoot Nag, which is about seven kms away from Sali (Mattan), the Zaildar of this area. Pt. Prasad Joo Razdan of Sali got constructed one storey wooden hut for Swami Ji's meditation.

In 1927, Swami Vidyadharji moved towards Swami Amar Nath Ji's cave, where he stayed and meditated for full one month.

He also went to Kapal Mochan (Shopian) which is one of the oldest shrines in Kashmir. He stayed there for sometime. It was here that a sect of Kashmiri Pandits called Purbis called on Swamiji and apprised him that fellow pandits did not mix up with them. Hearing this, Swami Vidyadharji asked them to arrange a big 'Havan'. He also made it a point to publicise it throughout the valley that Shri Vidyadhar had accepted to attend this 'Havan'.

This Havan was attended by Shri Kashyap Bandu, Sh. Prem Nath Bazaz, Sh. Jia Lal Kilam, Pt. Prem Nath Kanna and leaders of Sanatan Dharma Sabha. It marked a great event in the social harmony and community amity and brotherhood.

Swami Vidyadharji was a great Sanskrit scholar and Śaiva philosopher, who preached Śaiva philosophy wherever he went. He wrote the well known and famous Rajñā Stotra, Kalikā Stotra, Javālā Stotra and Guru Stotra.

At the last stage of his life, his trusted disciples constructed Vidhyadhar Ashram at Karan Nagar Srinagar. Swami Vidhyadharji stayed here for the rest of his life. Here he taught the Śaiva philosophy to the desired people. People from far and near places flocked to this Ashram to learn from him.

He attained Mahānirvāṇa in the year 1949, corresponding to third day of bright fortnight of Ashad Samvat 2006 Vikrami.

Think over it

एको द्रष्टासि सर्वस्य मुक्तप्रायोऽसि सर्वदा।
अयमेवहि ते बन्धो द्रष्टारं पश्यसीतरत्॥

Your bondage lies in this only that you are looking the seer as a separate being. Actually you are the one seer of everthing therefore you are always liberated.

अहं कर्तेत्यंहमान महाकृष्णाहिदंशितः।
नाहं कर्तेति विश्वासामृतं पीत्वा सुखीभव॥

"I am the doer" you have been bittten by the great black serpent of this egoistic feeling. Be happy by drinking the nectar of the faith "I am not the doer".

एको विशुद्ध बोधोऽहं इति निश्चयवह्निना।
प्रज्वाल्याज्ञान गहनं वीतशोकः सुखी भव॥

With the fire of this determination that I am the one Pure Consciousness, burn the forest of ignorance. Thus be happy and griefless.

मुक्ताभिमानी मुक्तोहि बद्धो बद्धाभिमान्यपि।
किंवदन्तीह सत्येयं या मतिः सागतिर्भवेत्॥

Indeed he is liberated who thinks like that, indeed he is bound who thinks that he is bound. This saying is true that whatever you think you become that.

साकारं अनृतं विद्धि निराकारं तु निश्चलम्।
एतत्तत्त्वोप़देशेन न पुनर्भवसंभवः॥

Know that which is formfull is unreal and which is without form is changeless. Being instructed in this Truth. You get deliverance from repeated births and deaths.

यथा न तोयतो भिन्नास्तरंगा फेन बुद्बुदाः।
आत्मनो न तथा भिन्नं विश्वमात्मविनिर्गतम्॥

Just as the waves foam and bubbles are not different from water, similarly the universe which has emanated from the Self is not different from it.

From ***Aṣṭāvakra Gītā Sāra***

विज्ञानभैरव – समीक्षात्मक अध्ययन

मूलप्रवचनकार –
शैवाचार्य ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज

III

(गतांक से आगे)

दिक् काल कलनोन्मुक्ता देशोद्देशा विशेषिणी।
व्यपदेष्टुं अशक्यासौ अकथ्या परमार्थतः॥ १४॥

अन्तः स्वानुभवानन्दा विकल्पोन्मुक्तगोचरा।
यावस्था भरिताकारा भैरवी भैरवात्मनः॥ १५॥

तत् वपुः तत्त्वतो ज्ञेयं विमलं विश्वपूरणम्।
एवंविधे परे तत्त्वे कः पूज्यः कश्च तृप्यति॥ १६॥

(*अन्वय*–असौ दिक् काल कलना उन्मुक्ता, देश उद्देश अविशेषिणी, व्यपदेष्टुं अशक्या, परमार्थतः अकथ्या, अन्तः स्वानुभवानन्दा, विकल्प उन्मुक्त गोचरा, या भरिताकारा अवस्था (सा) भैरवी–भैरवात्मनः। तत्त्वतः तत् वपुः विमलं विश्वपूरणं ज्ञेयं। एवं विधे परे तत्त्वे कः पूज्यः? कश्च तृप्यति?)

भैरव की यह अवस्था देश, काल और आकार से परे है, यह विशेष स्थान या विशेष पद से नामांकित नहीं की जा सकती है। वास्तव में यह अवर्णनीय है क्योंकि यह कही नहीं जा सकती है॥ १४॥

अपने अनुभव के अनुरूप यह अन्दर-अन्दर ही आनन्द से भरी हुई है और यह विकल्प की परिधि से दूर है। यह अवस्था जो सदा परिपूर्ण है, भैरवी अवस्था ही है जो स्वयं भैरव का ही स्वरूप है॥ १५॥

वास्तव में उसका महान स्वरूप निर्मल, सर्वत्रव्याप्त, परिपूर्ण जानना चाहिए। इस प्रकार की परमावस्था में कौन पूजा का पात्र हो सकता है और किसे वहां सन्तुष्ट किया जा सकता है?॥ १६॥

दिक्काल कलना उन्मुक्ता–

भैरव की यह अवस्था देश, काल और आकार की सीमा के अन्तर्गत नहीं है। यह इन तीनों से परे है।

देशोद्देश अविशेषिणी–

इस अवस्था में उद्देश और देश नहीं है। भगवान शिव के स्थान को नामांकित नहीं किया जा सकता। क्या आप जानते हैं कि भगवान् शिव कहां रहते हैं? यदि आप यह उत्तर दें कि भगवान् शिव शिवलोक में है, शिवलोक भगवान् शिव का निवासस्थान है जो स्वर्ग में है और इस लोक में भगवान् शिव कैलाश पर रहते हैं। इस प्रकार की कल्पना बे-सिर पैर है। इसीलिए कहा है कि 'देशोद्देशाविशेषिणी' और "दिक् काल कलना उन्मुक्ता" अर्थात् देश काल और आकार से परे है।

अकथ्या परमार्थतः–

परमार्थतः–वास्तव में यह अवस्था, अकथ्या-वर्णन करने के योग्य नहीं है।

अन्तः–यह आन्तरिक अवस्था है। **स्वानुभवानन्दा**- यह अपनी ही आनन्दावस्था से भरी हुई है।

विकल्पोन्मुक्त गोचरा–

यह हमेशा दो विरोधी कल्पनाओं की अपेक्षा रखने वाले निश्चयज्ञानात्मक विकल्प व्यापार से परे है।

स्वामी जी महाराज के अनुसार यह चिन्तन से भी परे है।

यावस्था भरिताकारा भैरवी भैरवात्मनः–

वह अवस्था सदा परिपूर्ण है। वास्तव में भैरव की वही भरितावस्था (full state) संपूर्णतया विमल (pure) और विश्वसत्ता से (Universal existence) पूर्ण है।

एवंविधे परे तत्त्वे–इस प्रकार के इस अनुत्तरतत्त्व में,

कः पूज्यः कश्च तृप्यति?–

कौन पूजा का पात्र है (**कः पूज्यः**)

कश्चतृप्यति–और कौन पूजा करने वाला है?

एवंविधा भैरवस्य यावस्था परिगीयते।
सा परा, पररूपेण परादेवी प्रकीर्तिता॥ १७॥

(*अन्वय*–भैरवस्य या एवंविधा अवस्था परिगीयते, सा परा; (सा) पररूपेण परादेवी प्रकीर्तिता॥)

भैरव की यह अवस्था जिसकी (तन्त्रों में) प्रशंसा की गई है सर्वोत्कृष्ट अवस्था है। यही

पर रूप में परादेवी के नाम से जानी जाती है॥ १७॥

भैरव की इस अवस्था का तन्त्रों की परिकल्पना में पहिले से ही उल्लेख है।

सा परा–वह सर्वोत्कृष्ट अवस्था

परा देवी–भैरवी की ही अवस्था है अर्थात् भैरव का तात्त्विक स्वरूप भैरवी अवस्था ही है। जब कभी आप इसकी व्याख्या करेंगे, जब कभी आप भैरव के वास्तविक स्वरूप पर प्रकाश डालेंगे, आप ऐसा करने में असमर्थ होंगे क्योंकि भैरव का तात्त्विक स्वरूप, वास्तव में ज्ञाता का वास्तविक स्वरूप है। इसे जाना नहीं जा सकता क्योंकि यह ज्ञान कराने वाला है। भैरव का वास्तविक स्वरूप प्रमातृरूप है, प्रमेयरूप नहीं। हमारी प्रमा से यह अवस्था दूर है। जब आप में भैरव के इस प्रमातृरूप वास्तविक स्वरूप को जानने की इच्छा होगी तो इसे जानना इस बात पर निर्भर है कि आप को भैरवी पद पर उतरना पड़ेगा। यही तो नियम है। जब आप भैरवी (पार्वती) के क्षेत्र में टहलोगे तो समझना आपने सही दिशा अपनायी है। इसी यात्रा क्रम को हमें अपनाना है। क्योंकि आपकी यात्रा का लक्ष्य पार्वती (भैरवी) की ओर पहुंचने का होना चाहिए, भैरव प्राप्ति का लक्ष्य बेकार है। भैरव यात्रा के लिए कोई मार्ग नहीं है। भैरव तो प्रत्येक सत् असत् भाव का ज्ञाता है। उसे कैसे जान सकोगे ? वह ज्ञान की परिधि से बाहिर है। यह भैरवभाव तभी पाया जा सकता है जब आप एक कदम भैरवपद से नीचे उतर कर शक्ति क्षेत्र में ठहरोगे।

अब हम विश्वोत्तीर्ण और विश्वमय अवस्थाओं में प्रवेश पाने के लिए एक सौ बारह यौगिक धारणाओं का वर्णन करेंगे। इस विज्ञानभैरव नामक आगमग्रन्थ में जिन एक सौ बारह धारणाओं को समझाया जायेगा, वे सारी भैरवी क्षेत्र से ही सम्बन्धित हैं। उनका भैरव-क्षेत्र के साथ कोई सरोकार नहीं है, क्योंकि भैरवी (पार्वती) ही प्रथम साधन है, साध्य (भैरव) तक पहुंचाने के लिये। इसीलिए कहा है कि 'पररूपेण परादेवी प्रकीर्तिता' अर्थात् परादेवी सर्वोत्कृष्ट पथ प्रदर्शिनी है। परन्तु क्या भैरव और भैरवी (शिव और पार्वती) की सर्वोत्कृष्टता में कोई अन्तर है? इसी प्रश्न का समाधान करते हुए बताते हैं कि–

शक्ति शक्तिमतोः यद्वत् अभेदः सर्वदा स्थितः।
अतस्तत् धर्म धर्मित्वात् पराशक्तिः परात्मनः॥ १८॥

चूंकि शक्ति और शक्तिमान् में कभी किसी भेद की संभावना नहीं की जा सकती है, धर्म और धर्मी में किसी भेद का होना असंभव है, अतएव पराशक्ति परात्मा से भिन्न नहीं हो सकती॥ १८॥

जैसे शक्ति (energy) और शक्तिधारक (holder of energy) में किसी प्रकार का भेदभाव संभव नहीं, उनमें सदा अभेद पाया जाता है, इसी प्रकार से शिव और शक्ति में भी संपूर्णतया अभेदभाव है।

तत् धर्म धर्मित्वात्–

तत् धर्म का तात्पर्य है कि भगवान् शंकर के सारे धर्म (aspects) धर्मि का तात्पर्य है–पार्वती जो शिव के सारे धर्मों को धारण करती है। अर्थात् शंकर के सारे धर्मों (aspects) की वाहिका (bearer) पार्वती है।

पराशक्तिः परात्मनः–वह सर्वोत्कृष्ट शक्ति तो सर्वोत्कृष्ट शिव की ही शक्ति है। इनमें कोई अन्तर नहीं है।

फिर इन दो को दिखाने का क्या अभिप्राय है? स्वामी जी महाराज कहते हैं कि हम भगवान् शंकर के स्वरूप को अपनाना चाहते हैं, हम इसे कैसे अपना सकेंगे? क्योंकि हम आश्रयदाता को आश्रित नहीं बना सकते। हम तो आश्रित को अपनायेंगे, आश्रयदाता को नहीं। आश्रयदाता को अपनाना असंभव है, दुष्कर है।

न वह्नेः दाहिका शक्तिः व्यतिरिक्ता विभाव्यते।
केवलं ज्ञानसत्तायां प्रारम्भोऽयं प्रवेशने॥ १९॥

(*अन्वय*–दाहिका शक्तिः वह्नेः व्यतिरिक्ता न विभाव्यते, ज्ञानसत्तायां प्रवेशने केवलं अयं प्रारम्भः॥)

अग्नि की दाहिकाशक्ति (Power to burn) अग्नि से भिन्न नहीं मानी जाती है। वास्तविक ज्ञानसत्ता में प्रवेश पाने के लिए यह केवल पहला कदम है॥ १९॥

जैसे जहां अग्नि का अस्तित्व है, वहां उसकी दाहिका (buring energy) पाचिका (energy of heating) और प्रकाशिका (energy of giving light) शक्तियों का भी अस्तित्व है। क्योंकि इन सारी शक्तियों को यही अग्नि धारण करता है और उत्पन्न करता है, पर ये सारी विभिन्न शक्तियां अग्नि से अभिन्न है।

वह्नेः–अग्नि से, **न**–नहीं, **दाहिका शक्तिः**–जलाने की शक्ति, **व्यतिरिक्ता**–अलग, विभाव्यते–जानी जाती है।

केवलं ज्ञानसत्तायां प्रारम्भोऽयं प्रवेशने–

प्रारम्भोऽयं प्रवेशने–अग्नि के साथ परिचय प्राप्त करने के लिए अर्थात् किसी पतीले

को गर्म करने के लिए किसी दीप को प्रकाशित करने के लिए या अग्नि में ईन्धन डालने के लिए, दाहिका शक्ति, प्रकाशिका शक्ति और पाचिका शक्ति से अग्नि के साथ परिचय प्राप्त किया जाता है। इसी प्रकार हमारा लक्ष्य भगवान् शिव की ज्ञानसत्ता के साथ परिचय प्राप्त करना है उसके लिए हम नवात्ममन्त्र का अभ्यास करते हैं जब कि उनका अस्तित्व शिव की ज्ञान सत्ता के सामने तुच्छ है। ये मन्त्र विधियां तो ज्ञानसत्ता में प्रवेश पाने के लिए केवल प्रारम्भिक कर्म हैं।

पराशक्ति पर भैरव से भिन्न नहीं है। पराशक्ति को अलग रूप से दर्शाने का अभिप्राय केवल यही है ताकि वह पर भैरव प्राप्ति के लिए प्रवेशद्वार का काम करे।

शक्त्यवस्था प्रविष्टस्य निर्विभागेन भावना।
तदासौ शिवरूपी स्यात् शैवी मुखं इहोच्यते॥ २०॥

(*अन्वय*–तदा शक्त्यवस्था प्रविष्टस्य निर्विभागेन भावना असौ शिवरूपी स्यात्, इह शैवी मुखं उच्यते॥)

जब कोई शक्ति की अवस्था में प्रवेश करता है अर्थात् जो शक्ति के साथ एकत्व प्राप्त करता है, तो उसी समय उसकी शिव के साथ भी अभिन्नता प्राप्त होती है। आगम शास्त्रों में शक्ति को शिव के पास पहुंचने के लिए प्रवेशद्वार माना गया है।

जब शक्ति के स्वरूप में प्रवेश पाने के लिए प्रयत्न करते है पर अपने व्यक्तिगत स्वरूप का परित्याग नहीं करते है तो आप उस अभीष्ट स्वरूप से वंचित रहते हैं। क्योंकि अन्ततः आपने व्यक्तिगत स्वरूप को अवश्य ही छोड़ना पड़ता है। जब तक आप अपने व्यक्तित्व को एक ओर नहीं करेंगे, विश्वमयता उदित नहीं होगी। अतः

शक्त्यवस्थाप्रविष्टस्य–आपने पहले शक्ति के स्वरूप को अपनाना है। तभी आप इस सत्य को समझते हैं कि अभेदभाव आपकी चेतना में जागृत हो उठा है, और तुम्हें शक्ति और शक्तिमान में कोई भेद दीख नहीं पड़ता है।

निर्विभागेन भावना–जब अभेदभाव आप में जागृत होता है, जब आप इस बात का अनुभव करते हैं कि भेदभाव समूल नष्ट हुआ है, आप उसके साथ एकाकार हुए हैं तो आप उसे अपना ही स्वरूप समझते हैं।

तदासौ शिवरूपीस्यात्–उस समय ऐसे साधक की भावना शिव के साथ एक हो जाती है।

शैवी–शक्ति का रूपान्तर है। यही शक्ति, **मुखं**–प्रवेशद्वार, **इह**–इन आगमशास्त्रों में, **उच्यते**–कही गई है। शक्ति ही सही मार्ग है जिस पर चलकर हमें सफर तय करना है॥

यथालोकेन दीपस्य किरणैः भास्करस्य च।
ज्ञायते दिग्विभागादि तत्वत् शक्त्या शिवः प्रिये॥ २१॥

(*अन्वयः*–प्रिये! यथा दीपस्य आलोकेन, भास्करस्य किरणैः च दिग्विभागादि ज्ञायते तत् वत् शक्त्या शिवः ज्ञायते।)

हे पार्वती! जैसे दिशा आदि का सही ज्ञान दीपक के प्रकाश से, अथवा सूरज की किरणों से होता है उसी प्रकार शक्ति के द्वारा ही शिव को जाना जाता है।

प्रिये–हे पार्वती, **यथा**–जैसे, **दीपस्य आलोकेन**–दीपक के प्रकाश से, **भास्करस्य किरणैः**–सूरज की किरणों से, **दिग्विभागादि**–दिशा आकार आदि का **ज्ञायते**–सही ज्ञान होता है, **तत्वत्**–उसी प्रकार से, **शिवः शक्त्या ज्ञायते**–शिव शक्ति के द्वारा जाना जाता है। शक्ति (energy) ही साधन है जिससे हम शिवस्वरूप को समझ सकते है और उसमें प्रवेश कर सकते हैं।

इस कारिका में तीन बातों की ओर संकेत किया गया है–पहिली बात यह है कि जैसे दीपक की ज्योति दीपक के प्रकाश से भिन्न नहीं है, जैसे सूर्य किरणें सूर्य से भिन्न नही हैं, इसी तरह शक्ति शिव से भिन्न नहीं है।

दूसरी बात यह है कि जैसे दीपक के द्वारा या सूरज के द्वारा, संसार के विविध पदार्थ जाने जाते हैं, इसी प्रकार शक्ति के द्वारा विश्व को जाना जाता है।

तीसरी बात यह है कि दीपक के प्रकाश को जानने के लिए दूसरे दीपक की आवश्यकता नहीं पड़ती है, सूर्य को जानने के लिए दूसरे सूर्यप्रकाश की आवश्यकता नहीं पड़ती है, क्योंकि ये तो स्वप्रकाश से ही प्रकाशमान है, इसी प्रकार से शिव भी अपनी शक्ति से जो उससे भिन्न नहीं हैं, जाना जा सकता है।

शारिकादेवीं प्रति श्रद्धाञ्जलिः

रचयिता : डा० बी. एन. कल्ला

१. लक्ष्मणस्य प्रिया शिष्या शारिकानाम विश्रुता।
शैवदर्शन निष्णाता अकाले त्रिदिवं गता॥

२. ईश्वराश्रमक्षेत्रस्था सर्वलक्षणसंयुता।
अद्वैतमार्गलग्नासा अकाले त्रिदिवं गता॥

३. स्वधर्मनिरतादेवी शाक्तधर्मप्रचारिणी।
सद्ज्ञानदायिनी देवी अकाले त्रिदिवं गता॥

४. दिव्यगुणयुता नार्यः न गणयन्ति स्वकं सुखम्।
ज्ञानामृतरसवाक्यैः हरन्ति प्रसभं मनः॥

५. स्मरन्ति तद्गुणान् सर्वे राष्ट्रधर्मस्य प्रेरकान्।
आश्रमस्य प्रियाभक्ताः शैवधर्मानुयायिनः॥

६. तत्स्मृतौ दीयतेऽत्र श्रद्धाञ्जलिः पुनः पुनः।
शैवाश्रमस्यभक्तैर्हि शारिकामृदुभाषिण्यै॥

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् जाग्रज्जपन् जुह्वत् प्रपूजयेत्।
गुर्वाज्ञामेव कुर्वीत तद्गतेनान्तरात्मना॥

"Whether moving or standing, sleeping or walking doing Japa or offering oblations and worshipping, carry out only the injunctions of the Guru with your inner being dwelling in him."

अनमोल रत्न गुरुदेव का

प्रकाशिका
श्रीमती प्रभादेवी

हमारे प्रातः स्मरणीय गुरुवर्य, मोक्ष-लक्ष्मी-संपन्न श्री ईश्वर-स्वरूप जी महाराज ने ई० सन् १९६२ में हमें तन्त्रालोक का अध्ययन करवाया। इस ग्रन्थ को पढ़ाने से पूर्व हमें त्रिकशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों से सुसज्जित वर्णमाला की एक तालिका लिख कर दी। इतने वर्षों से यह अमूल्य पत्रा, महाराज द्वारा लिखित मेरे पास सुरक्षित रहा। मैं यह उपयोगी तालिका त्रिकशास्त्र के रसिक पाठकों के हितार्थ 'मालिनी' पत्रिका में दे रही हूं। आशा है इस से त्रिकशास्त्र के जिज्ञासुओं की कई शास्त्र सम्बन्धित समस्यायें हल होंगी। ऐसा होगा तो मेरा इतने वर्षों से सुरक्षित रखने का प्रयास भी सफल होगा।

तालिका यह है :–

अग्निः	=	रेफः	प्राणः	=	हकारः
संहारः	=	क्षः	कालः	=	मः
इन्द्रः	=	लः	अम्बु	=	वः
समीरणः	=	यः	हंसः	=	ह
अमृतं	=	स	कालरुद्रः	=	अ
भुवनेशः	=	औ	दण्डः	=	रेफः
गुह्यशक्ति	=	ई	इच्छा	=	अः
इच्छा	=	ह्रीः	आकाशबीज	=	ख
आकाशबीज	=	ह	शून्यद्वयं	=	विसर्गः
रुद्रः	=	अ	तारः	=	प्रणवः
द्विजिह्वः	=	ज	शरस्वरः	=	उ
अस्त्रं	=	फट्	योनि	=	ए
जीवः	=	स	कालानलः	=	र
वामाङ्घ्रिः	=	फ	दक्षजानुः	=	ए
त्रिशूल	=	ज	त्रिशूल	=	औ
दक्षाङ्गुलिः	=	भ	वामस्तन	=	ल

नाभिः	=	क्ष
मरुत्	=	य
सर्वगतः	=	ह
तृतीयाद्यं	=	च
डाकिनी मर्म	=	ड
नवमः	=	आ
उद्धीशः	=	व
सुधा	=	स
शण्ठाद्यं	=	ऋ
नभः	=	क्ष
कूटं	=	क्ष
माया	=	ह्रीं
चतुष्कलः	=	ह्रीं
नवात्मा	=	ह् र् क्ष् म् ल् व् य् णूँ
वामस्कन्द	=	य
आभरण	=	ऊ
त्रिकूटः	=	क्ष
अनच्कः	=	ह
अनुत्तरः	=	अ
घान्तः	=	ङ
स्वरः	=	ओ
अश्वः	=	ण
त्रिकोणं	=	ए
तृतीयं ब्रह्म	=	ए
बिन्दुः	=	हूँ
सावहा	=	स्वाहा

कण्ठः	=	व
विसर्गः	=	अः
दारणा	=	आ
तरङ्गं	=	ण
पवनः	=	य
लक्ष्मी बीजं	=	श
सोमात् सप्तमः	=	ऋ
छेदकं	=	क
छेदकम स्वरं	=	स्कृक्
छेत्ता	=	क
इन्दुः	=	स
बिन्दुः	=	हुँ
मातृतारः	=	फ्रें
नितम्ब	=	म
वामकर्ण	=	ण
जलं	=	व
ऊर्ध्वबाहुः	=	झ
अग्निदयिता	=	स्वाहा
इच्छा	=	इ
त्रयोदशः	=	ओ
वर्गाद्यः	=	अ
त्र्यस्त्रं	=	ए
विसर्ग ब्रह्म	=	ए
मायार्णं	=	ह्रीं
इषुः	=	फट्

सद्गुरु गाथामाला का
चौथा मनका

प्रो० मखनलाल कुकिलू

(गतांक से आगे)

कश्मीर धरा पर, वर्तमान संकट के घने बादल, स्वामी जी महाराज, बहुत समय से पूर्व मडराते हुए देखकर अपने भक्तों प्रेमियों और शिष्यों को सदा सचेत रहने के लिए कहा करते थे। इसी अभिप्राय से उन्होंने एक रविवासरीय सभा में श्री अमृतेश्वरभैरव मंत्र के व्याख्यात्मक श्लोक उपदेश के रूप में दुहराये और हर समय उनके अध्ययन, मनन, व चिन्तन के लिए आग्रह करने लगे। वास्तव में सद्गुरु महाराज ने श्री अमृतेश्वर भैरव का "ॐ जुं सः अमृतेश्वर-भैरवाय नमः" मन्त्र कवच के रूप में प्रकट करके प्रत्येक आस्तिक सज्जन की सुरक्षा को सुनिश्चित किया, क्योंकि यह मन्त्र शैवागम का सार है और अनेकों असाध्य कठिनाईयों के लिए रामबाण है। वर्गगत, जातिगत और लिंगगत विषमताओं के प्रभाव से अछूता रहने के कारण यह मन्त्र सर्वग्राह्य है और अचूक प्रभाव वाला है। इस मन्त्र की व्याख्या करते करते इन्होंने मन्त्रगत सारी बारीकियों और विशेषताओं का विशद वर्णन करके यह सिद्ध किया था कि गुरुदेह में अधिष्ठित होकर स्वयं परमेश्वर ही अपने आश्रितों पर समय असमय पर साक्षात् अनुग्रह करते हैं कहा है कि–

मनुष्यदेहमास्थाय छन्नास्ते परमेश्वराः।
अर्थात् गुरुदेव मनुष्य शरीर में स्वयं परमेश्वर का ही रूप होते हैं।

आतंकवाद के प्रारंभ होने से कुछ समय पहिले सद्गुरु महाराज ने अपनी भैरवी अवस्था में एक रविवार के दिन अपने भक्तजनों और शिष्यों को श्रीमती कमला बाबा के परिसर में स्वात्मानन्द के चमत्कार से चमत्कृत किया। उपस्थित भक्त समुदाय में से पति-पत्नी जोड़े को उठाकर भैरव-भैरवी नृत्य उनसे करवाया। इस प्रकार एक-एक करके सभी को उठाकर हमारे सद्गुरु महाराज आनन्दातिरेक में विभोर हो उठे। वास्तव में पर भैरव ने हमारे गुरु महाराज को उस समय शक्तिपातवश अमृत बीज हृदय का साक्षात्कार करवाया था जिसके विषय में आचार्य अभिनवगुप्त ने लिखा है कि स्वयं परमार्थ के अनुग्रह से जो कोई इस अमृतबीज के रहस्य को जान लेता है, समझना चाहिए कि स्वयं अमृतेश्वर भैरव ने उसे दीक्षित किया हो क्योंकि यह अमृत बीज तो भैरवीय हृदय माना जाता है और ऐसे साधक को किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती है। सुश्रीशारिकादेवी आदि समाहित साधकों ने भली भांति इस तथ्य को आंका होगा कि किस प्रकार पर-भैरव साक्षात्

रूप में उस समय अलौकिक व्यवहार में लीन थे। पाठकगण शायद यह नहीं जानते होंगे कि 'अमृतबीज हृदय' क्या है? और इसका तात्पर्य क्या है? अमृतबीज हृदय "सौः" बीज का पारिभाषिक नाम है। 'सौः' बीज में 'स' आत्मा नररूप चन्द्रमा का बीजाक्षर है "औ" सूर्य का बीजाक्षर है और ":" (विसर्ग) अग्नि का बीजाक्षर है। 'स' में पृथिवी तत्त्व से लेकर मायातत्त्व तक ३१ तत्त्व हैं 'औ' में शुद्धविद्या ईश्वर और सदाशिव तत्त्व है इसमें इच्छा ज्ञान और क्रिया शक्ति का संगम है, इसीलिए इसे त्रिशूल भी कहते हैं। विसर्ग (:) में ऊपर का बिन्दु (·) शिव द्योतक है और नीचे का बिन्दु शक्ति द्योतक है अर्थात् शिव तत्त्व और शक्तितत्त्व इन दो तत्त्वों का समरसीभाव ही विसर्ग है। इस तरह शैवदर्शन सम्मत ३६ तत्त्वों का स्वरूप इसी अमृतबीज हृदय अथवा 'सौः' बीज में स्पष्ट रूप से समेटा हुआ है। स्वामी जी महाराज ने इसी अलौकिक रसास्वाद का चर्वण उपरोक्त भैरवीय नृत्य के समायोजन से उस समय किया जबकि बाह्य वातावरण निर्मम हत्याओं और अग्निकाण्डों से दूषित हो चुका था। वास्तव में स्वामी जी महाराज ने इन निर्मम हत्याओं का संकेत सन् १९९० के मार्च महीने में उस समय दिया जब मेरे गुरु भाई श्री प्राणनाथ जी राजदान स्वामी जी के लिए कुर्ता पायजामा आश्रम भवन के वरण्डा के अगल-बगल में सी रहे थे और सद्गुरु महाराज निद्रावस्था में मग्न थे कि अचानक उठ खड़े हुए और रात के डेढ़ बजे प्राणनाथ जी से सबों को बुलाने के लिए कहा और आदेश दिया कि "आश्रम के आंगन में आग जलाओ, उसमें सारी चपलें" डाल दो यहां श्मशान बन रहा है। देखो कैसे ये कापालिक शवों को जला रहे हैं"। कितना सारगर्भित संकेत था जिसे केवल तत्त्वनिष्ठ व्यक्तियों या साधकों ने ही उस समय समझ लिया। सामान्य व्यक्तियों ने इस घटना को सही रूप से न जानकर इसकी पारमार्थिकता की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। सद्गुरु महाराज आतंकवाद के इन दुर्दिनों में व्यत्थान में रहकर भी समाधिसुख का निरन्तर उपभोग करते थे और पूरी तरह से अनाख्य स्थिति को पाकर भगवती काल संकर्षिणी रूपी अमा कला को हठपूर्वक अपने स्वरूप में विलीन करके अनन्त आनन्द रस पूर्ण स्वरूप में निमग्न रहा करते थे। स्वामी जी महाराज बार-बार कहा करते थे कि आपत्ति आने वाली है। सावधान रहो। हमें संयम में रहना चाहिए हमारा आहार सात्त्विक होना चाहिए, कार्य पवित्र होना चाहिए और वचन पवित्र होने चाहिएँ अर्थात् चोरी हिंसा ढ़ाका घृणा रहित कर्म जीवन की सर्वांगीण उन्नति में सहायक होते हैं। वाणी की मधुरता, स्पष्टवादिता और सत्यवादिता वचन पवित्रता के अन्तर्गत आती हैं और सात्त्विक आहार के अन्तर्गत वह आहार आता है जो हक का हो, पसीने का हो, शुद्ध हो, बनाने वाले का विचार तथा बनाने के पात्र भी अच्छे हों और मांस आदि तामसिक पदार्थों से रहित हो। स्वामी जी मांस खाने के कट्टर विरोधी थे। मांस खाने की निन्दा करते-करते वे कभी थकान महसूस नहीं करते थे और अनेक उद्धरण दे देकर मांस खाने का मुक्त

कंठ से निषेध करते थे। इसी सन्दर्भ में उन्होंने एक दिन एक कसाई की रोमांचक कथा सुनाई जिसका नाम "सदन" था। सदन बहुत सीधा सादा था। ईश्वर का परम भक्त था। मन से निर्मल था। कभी किसी की बुराई का विचार भी नहीं करता था। दुर्भाग्य के कारण या पिछले जन्म के पाप कर्मों के कारण अथवा अनेक जन्म जन्मातरों से संचित वासनागन्ध के कारण, यह निन्दितकर्म करने को सदन विवश हो गया था। एक समय की घटना है कि सदन कसाई शिकार करने के लिए कहीं दूर चला। चलते चलते रात हो गई और सदन कसाई को एक गांव में रुकना पड़ा। गांव का वातावरण अतीव सुहावना था। आसपास ही एक मकान को देखकर सदन मकान में घुसा और अन्दर आते ही मकान मालकिन ने सदन का आदर सत्कार विशेष रूप से किया और उसे नाना प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ खाने को दिये। सदन मालकिन के इस प्रेमपूर्ण व्यवहार को देखकर बहुत ही प्रभावित हुआ और उसे हृदय से दुहाई देने लगा। सदन सच्चे हृदय का था वह इस बात को न भांप सका कि इसके मन में क्या है? वास्तव में यह मालकिन सदन के रूप रंग और मनमोहक लावण्य पर आकृष्ट हुई थी और इसके मन में यह भाव जगा था कि क्यों न सदन को अपना पति बना ले और अपने जीवन को सुखी बनाकर कष्टों से सदा मुक्त होके जीवनयापन करे। इस मालकिन का अपना पति कुरूप था, काला था। वह सदा इसके व्यवहार से असन्तुष्ट रहती थी। इस मनमोहक आकार वाले सदन को देखकर वह इसके रूप रंग पर ललचाई और अपने पति को मार बैठी। बेचारे सदन को इस कुलटा के पाप कर्म का कुछ भी परिचय नहीं था। जब इसके दुर्व्यवहार को वह जानने लगा तो उसके सारे शरीर में सिहरन उठी। इस नारी का कामार्तता को जानकर वह पुकार उठा मां!। क्योंकि उसे इसमें मां का रूप ही दीख पड़ा। सदन के इन शब्दों से मालकिन के बदन में आग लगी। वह इसे भला बुरा कहने लगी और अपने सारे पड़ोसियों को बुला बैठी। रोती विलखती धड़ाम से जमीन पर गिरी और सबों से कहने लगी कि इस व्यक्ति ने मेरे पति को जान से मारा क्योंकि यह मेरे साथ शादी करना चाहता था। लोगों ने जब यह सुना तो वे जोर-जोर से सदन की पिटाई करने लगे और सदन को इस दुर्व्यवहार के लिए कड़ी सजा देने का आग्रह करने लगे। अन्त में सदन के दोनों हाथ काट दिये गये। यह देखकर सदन को जरा भी दुःख नहीं हुआ। वह प्रभु को मन ही मन दुहाई देने लगा कि हे प्रभु आपकी महत्ता अवर्णनीय है। जिन दो हाथों से मैं रोज मांस काटता था उनको ही काटकर मुझे सदा के लिए आपने इस संसार से मुक्त किया। अब मैं निश्चिन्त होके भजन करूँगा। स्वामी जी महाराज के नेत्र भी यह कथा दुहराते-दुहराते सजल हो गये और सदन कसाई के स्थितप्रज्ञभाव की दुहाई देते रहे। वास्तव में स्वामी जी महाराज को सदन कसाई के जागतिक व्यवहार के साथ घृणा थी पर उसके ईश्वर प्रेम, निर्मल भाव और अटूट भावना के लिए उनके मन में गहरी श्रद्धा थी। स्वामी

जी महाराज अपने बचपन से ही मांस खाने के विरोधी थे। जब कभी अपने संयुक्त परिवार में, (याद रहे स्वामी जी की पांच बहिनें और दो भाई थे) मांस पकाया जाता था तो बालक विद्यार्थी स्वामी जी मांस की हांडी को तहस-नहस करके खेलने चला जाता था। स्वामी जी की माता जिसका नाम अरण्यमाली था, बालक लक्ष्मण के घर से स्कूल की ओर जाने के पश्चात् ही मांस बनाने का कार्यक्रम करती थी। माता जब इस बच्चे को खाना खिलाती थी तो अगर मांस की गन्ध उस खाने में होती थी तो बालक स्वामी जी को उसी समय उल्टियां लगती थीं। बार-बार यह बच्चा हाथों के इशारे से, सिर के इशारे से मांस युक्त खाना खाने से परहेज़ करते थे पर मां का प्यार जबरदस्ती खिलाना चाहता था जिसका परिणाम यह होता था कि सब कुछ उल्टी में वापिस लाता था। इसके विरुद्ध वैष्णव भोजन में इतना आनन्द आता था कि बार-बार भोजन की इच्छा प्रकट करते थे। इसकी स्वाभाविक प्रकृत्ति से परिचित होकर इसकी माता ने अपनी ज़िद छोड़ दी और शिशु लक्ष्मण को परिपूर्ण वैष्णव भोजन ही केवल देने के लिए मन में ठानी। आगे चलकर स्वामी जी महाराज ने मांस खाने का निषेध जोरदार शब्दों में प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक सभा में, प्रत्येक मण्डली में और प्रत्येक शुभ अवसरों पर किया। स्वामी जी महाराज जिस किसी को गुरुमन्त्र का उपदेश देते थे उसे शाकाहारी रहने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी। किसी अपरिचित व्यक्ति के मुख से शाकाहारी होना सुनकर स्वामी जी महाराज गद्गद होते थे और उस व्यक्ति का महान आदर करते थे। स्वामी जी महाराज को केवल दो बातें से असीम प्रसन्नता होती थी एक किसी संस्कृत विद्वान् को देखने से दूसरी शाकाहारी व्यक्ति से। यदि स्वामी जी किसी अनिवार्य कार्य में लीन होते थे और किसी से मिलने के लिए निषेध करते थे पर यदि कोई यह कहता कि अमुक संस्कृत विद्वान आपसे मिलने को आये हैं तो उसी समय झट से सारा कार्य कलाप छोड़कर उनसे मिलते थे। सन् १९८४ में जब आश्रम के अहाते में ही नया सत्संग भवन बन रहा था तो स्वामी जी अतीव व्यस्त रहते थे उसके निर्माण कार्य में। एक दिन डा० बलजिन्नाथ पण्डित के साथ एक प्रतिष्ठित संस्कृत विद्वान् श्री मुरलीधर पाण्डेय जी स्वामी जी से मिलने आये। डा० पंडित ने स्वामी जी से कहा कि कोई व्यक्ति आपसे मिलना चाहते हैं तो स्वामी जी ने क्रोधित होकर उत्तर दिया कि वह किसी से इस समय मिलना नहीं चाहते हैं। फिर श्री बलजिन्नाथ जी ने इस प्रतिष्ठित विद्वान को स्वामी जी के पास लिया और जब श्री मुरलीधर पांडेय जी ने निरर्गल संस्कृत भाषा में स्वामी जी से अपना परिचय दिया तो उसकी विद्वत्ता से अभिभूत होकर उन्होंने गले लगाया और सारा कार्य कलाप वहीं छोड़कर अपने संग में बिठाया। यह स्वामी जी महाराज का संस्कृत विद्वानों के प्रति विशेष आदर सत्कार और निरतिशय प्रेम को जतलानेवाला दृश्य हृदयहारीथा।

क्रमशः।

Holy soil from Amriteshwar Bhairava Temple Nishat Srinagar Kmr. spread on Switzerland hill

Sacred soil of Amriteshwar Bhairava Temple, Srinagar, Kashmir was brought to Switzerland and spread on a hill-top there to mark the conclusion of International Earth Festival organized by Foundation 'Friends of People' of Montreux for peace and prosperity of the world. The Festival was held at Waldenburg, Switzerland from 25th of September to 28th of September, 1997. Three hundred and twenty five delegates from Japan, Canada, U.S.A., Bali (Indonesia), Australia, New Zealand and India, besides thirty European countries, participated, delivering lectures and reciting Mantras throughout the festival. Shiva Yogi Shiva Svambhu Gideon Fontalba, Director of the Festival supervised the deliberations.

As part of the concluding day function, according to a press release issued by the Secretary, Mr. Christine Kelen Berger, Fire was enkindled at a hill-top nearby the festival site which lasted for nearly four hours. The festival came to an end with spreading of holy soils of all the participating countries on the fire site. The soil of Amriteshwar Bhairava Temple of Nishat, Srinagar, where Kashmir's great Śaiva saint, Svāmī Lakṣmaṇa Joo used to worship Bhairava and "receive direct vibrations for the welfare of mankind" was brought by Prof. M.L. Kukiloo for the ceremony.

Prof. Makhanlal Kukiloo, a humble disciple of Svāmī Lakṣmaṇa Joo Māharāj, was specially invited to attend the festival. He delivered three lectures on Kashmir Śaivism during the Earth festival days. According to a press release, organisers of the festival and its all participants, were very much impressed by the contents of these lectures and desired to be benefitted in Śaiva meditation in future also.

Courtesy—
Secretary,
Foundation **'Friends of the People'**,
Montreux, Switzerland

Shelter in harmony with nature

***HUDCO** provides options.*

Show your concern. Join the environment-friendly sustainable shelter movement.
*Contact any of the nearest 450 Building Centres or **HUDCO** office.*

Eco-friendly, appropriate, durable, energy saving aesthetically pleasing and cost-effective Building Materials for :

- Innovative housing in urban and rural areas throughout India.
- Hudco encourages use of locally available resources and waste materials such as *fly ash, rice husk,coconut pith, agri-waste, wood waste, sisal, coir & glass fibre, clay, gypsum, mud, sand, lime, stone, bamboo etc.* and indigenous construction techniques with emphasis on creating clean, green and healthy built environment.

hudco

Housing & Urban Development Corporation Ltd.
HUDCO Bhawan, India Habitat Centre, Lodhi Road,
New Delhi-110003 Tel: 4615343 Fax (011) 4625308